दिसंबर १९९४ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

बुद्ध और बिंबिसार

भ्रमित जयसेन

बिंबिसार के पुत्र राजकुमार जयसेन के बारे में भगवान ने कहा था कि वह अत्यंत कामलोलुप है। वह कामार्त राजकुमार –

काममज्झे वसन्तो – कामभोगों के बीच निवास करता हुआ,

कामे पटिभुञ्जन्तो – कामभोग का आस्वादन करता हुआ,

कामवितक्के हि खज्जमानो – कामवितर्कों द्वारा भक्षण किया जाता हुआ;

कामपरिळाहेन परिडय्हमानो – कामाग्नि द्वारा दग्ध किया जाता हुआ;

कामपरियेसनाय उस्सुको – (नित्य नये) कामभोग की खोज में उत्सुक और निमग्न रहता हुआ, दूषित जीवन बिताता है।

ऐसा व्यक्ति कामभोगों का सर्वथा परित्याग करके भिक्षु का जीवन जी सके यह तो असंभव ही था, परंतु गृही रहते हुए भी कभी-कभी अष्टशीलों का पालन करते हुए साप्ताहिक उपोसथ कर ले अथवा कुछ दिनों के लिए किसी विहार में रहकर ध्यान और विपश्यना का अभ्यास कर ले, यह भी उसके लिए अशक्य था, असंभव था।

इसीलिए भगवान ने कहा कि यह असंभव है कि इस प्रकार कामपंक में डूबा रहने वाला राजकुमार उस सच्चाई का साक्षात्कार कर सकेगा जो – **नेक्खम्मेन ञातब्बं... दट्ठब्बं... पत्तब्बं... सच्छिकातब्बं** – निष्कामता से ही जानी जा सकती है, देखी जा सकती है, प्राप्त की जा सकती है और साक्षात्कार की जा सकती है।

सचमुच यह असंभव है कि कोई व्यक्ति कीचड़ में लोट-पलोट लगाता रहे और अपने आप को स्वच्छ भी रख सके; कोई व्यक्ति काम की वाला में सतत जलता रहे और आंतरिक सच्चाई के साक्षात्कार का शांति-लाभ भी ले सके।

राजकुमार जयसेन के मामा भिक्षु भूमिज के मन में उसके प्रति करुणा जागी। जिस ध्यान का रस उन्होंने स्वयं चखा था उसे उनका भांजा भी चखे। उसे चखने के लिए गृहस्थ जीवन त्याग कर प्रव्रजित न हो तो भी जैसे अन्य अनेक गृहस्थ अपनी गृही जिम्मेदारियों को कुशलतापूर्वक निभाते हुए भी व्यभिचार को सदा के लिए त्याग कर, समय-समय पर एक या एक से अधिक दिनों तक कामभोग से सर्वथा विरत रहकर अंतर्मुखी होने का अभ्यास करते हैं और लाभान्वित होते हैं, वैसे ही राजकुमार जयसेन भी करे और लाभान्वित हो। अनुमानतः इसी उद्देश्य से वह भिक्षाटन के लिए राजकुमार जयसेन के घर गये, जहां उन्हें एक बिछे आसन पर ससम्मान बिठाया गया। राजकुमार जयसेन भी उनसे मिलने के लिए अंतःपुर से बाहर आया और कुशल-क्षेम की औपचारिक बातें करके एक ओर बैठ गया।

भिक्षु भूमिज राजकुमार जयसेन को दीर्घकालीन या अल्पकालीन ब्रह्मचर्यवास पर भिक्षु भूमिज कुछ समझाते, इसके पहले ही इसने इस विषय की चर्चा स्वयं छेड़ दी। उन दिनों की भाषा में श्रेष्ठ जीवन जीने को धर्माचरण भी कहते थे, ब्रह्माचरण भी। शील, समाधि और प्रज्ञा का जीवन जीना ही धर्माचरण कहा जाता था। धर्माचरण कहें या ब्रह्माचरण – उसमें कामभोग से विरत रहने का व्रत समाविष्ट है ही। इसके लिए गृहत्यागी अपने शास्ता के पास जीवन भर रह कर ब्रह्मचर्यवास करता था और गृहस्थ अल्पकाल के लिए। कोई साधक मुक्ति मोक्ष आदि की आशा-आकांक्षा लेकर और कोई लौकिय तथा परलौकिय सुखों की आशा-आकांक्षा लेकर ब्रह्मचर्यवास करता होगा। कोई-कोई बिना किसी प्रकार की आशा-आकांक्षा के ही ब्रह्मचर्यवास करता होगा। इसी को लक्ष्य कर राजकुमार जयसेन ने कहा कि कुछ श्रमण-ब्राह्मण इस मत के हैं कि किसी भी उद्देश्य से ब्रह्मचर्यवास किया जाय उसका कोई भी फल प्राप्त नहीं होता। ब्रह्मचर्यवास सदा निरर्थक निष्फल होता है।

यह कहकर जयसेन ने भिक्षु भूमिज से पूछा कि इस विषय में आप के शास्ता का क्या मत है?

उत्तर देते हुए भिक्षु भूमिज ने कहा कि भगवान के उपदेशों को उन्होंने जिस प्रकार समझा है, उसके अनुसार कोई व्यक्ति किसी भी उद्देश्य से ब्रह्मचर्यवास करे, परंतु सफल वह तभी होता है जब कि उसका ब्रह्मचर्यवास **योनिसो** होता है। यदि वह **अयोनिसो** हो तो उस ब्रह्मचर्यवास का उसे कोई लाभ नहीं मिलता। यह सुन कर राजकुमार जयसेन झट बोल उठा, "यदि तुम्हारे शास्ता का ऐसा मत है तो मैं यह मानूं कि वे अन्य सभी श्रमण-ब्राह्मणों में मूर्धन्य हैं।"

स्पष्ट है कि उसके इस कथन में गहरा व्यंग समाया हुआ था। उसका मानस पहले से ही तथागत और उनकी शिक्षा के प्रति विपक्ष के भावों से पूर्वाग्रहग्रसित था, विरोध के भावों से दूषित था। उसने अपने मामा से योनिशः और अयोनिशः ब्रह्माचरण का अर्थ तक नहीं पूछा और ऐसा व्यंग-भरा वक्तव्य देकर बात वहीं समाप्त कर दी।

भगवान की शिक्षा के अनुसार कार्य-कारण के नैसर्गिक नियमों को आधार मान कर जो ब्रह्मचर्यवास किया जाता है, वही योनिशः होता है, वही लाभप्रद होता है; अन्य नहीं। नैसर्गिक नियम यह है कि तृष्णाजन्य विकारों से कोई अपना चित्त विकृत कर ले तो परिणामस्वरूप दुक्ख भोगता है और विकारों से मुक्त हो जाय तो दुक्ख-विमुक्त हो जाता है।

इस नैसर्गिक नियम पर आधारित हो तभी दर्शन सम्यक याने सही होता है, अतः योनिशः होता है। अन्यथा मिथ्या होता है, अयोनिशः होता है। इस नैसर्गिक नियम पर आधारित हो तो ही संकल्प-विकल्प, तो ही वाचिक-कर्म, शारीरिक-कर्म, आजीविका, प्रधान-परिश्रम, तो ही सजगता और समाधि भी सम्यक होती हैं, सही होती हैं, योनिशः होती हैं। अन्यथा यह सब मिथ्या होते हैं, अयोनिशः होते हैं।

भगवान बुद्ध ने समझाया कि जो इस प्रकार योनिशः ब्रह्माचरण का जीवन जीता है उसे मनोवांछित फल वैसे ही प्राप्त होता है जैसे कि तेल चाहने वाले को तिलहन के पेरने से तेल प्राप्त होता है; दूध चाहने वाले को दुधारू गाय का थन दुहने से दूध प्राप्त होता है; नवनीत चाहने वाले को दधि-मंथन से नवनीत प्राप्त होता है; अग्नि चाहने वाले को दो सूखी लकड़िओंके रगड़ने से अग्नि प्राप्त होती है।

जो अयोनिशः ब्रह्माचरण का जीवन जीता है उसे वैसे ही मनोवांछित फल प्राप्त नहीं होता जैसे कि तेल चाहने वाले को रेत पेरने से, दूध चाहने वाले को गाय का सींग दुहने से, नवनीत चाहने वाले को पानी मथने से, अग्नि चाहने वाले को दो गीली लकड़ियों को रगड़ने से कोई फल प्राप्त नहीं होता।

भगवान ने भिक्षु भूमिज से कहा कि यदि तुम राजकुमार जयसेन को इन उपमाओं से समझाते तो संभव है वह तुम्हारे कथन का अनुमोदन करता। इसके पहले उन्होंने श्रामणेर अग्निवेश को भी कुछ एक उपमाएं बता कर कहा था कि यदि तुम ऐसी उपमाओं से समझाते तो संभवतः जयसेन तुम्हारे कथन का अनुमोदन करता। परंतु दोनों ही धर्म के मार्ग पर नये थे। स्वयं धर्म-धारण करने का अभ्यास अवश्य कर रहे थे, परंतु किसी दूसरे को भली प्रकार धर्म समझाकर आश्वस्त कर सकने की क्षमता प्राप्त नहीं कर पाये थे। अग्निवेश तो अभी श्रामणेर ही था, परंतु भूमिज भिक्षु होते हुए भी लगता है अभी परिपक्व नहीं हो पाये थे। इसीलिए दोनों ने भगवान के इस कथन पर एक जैसी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा था –

"भगवान, मैं राजकुमार को इन उपमाओं से कैसे समझाता जब कि मैंने इन्हें पहले कभी सुना ही नहीं था। मैं इन्हें आज पहली बार आप से सुन रहा हूं।"

स्पष्ट है कि राजकुमार जयसेन को श्रामणेर अग्निवेश और भिक्षु भूमिज जैसे नौसिखिये शुद्ध धर्म की महत्ता नहीं समझा सके। परंतु उसे समझना भी तो नहीं था, इसी कारण वह भगवान बुद्ध और उनके वरिष्ठ शिष्यों से कतराता रहा। यह अनुमान करना उचित ही लगता है कि वह उन्मुक्त कामभोग के विरुद्ध कुछ भी सुनने को तैयार नहीं था। अवश्य ही उसका गुरु उन्मुक्त कामभोग का प्रबल हिमायती रहा होगा। दुर्बल मानव कामभोग के क्षेत्र में किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं चाहता और जब उसे ऐसा गया-गुजरा गुरु मिल जाय, जो कि वैवाहिक आचार-संहिता को ठुकरा कर पशुओं जैसे उन्मुक्त कामाचरण को प्रोत्साहन देने वाला हो तो उसे वह बहुत प्रिय लगता है। ऐसे गुरु की ओर अनेक चारित्र्य-शिथिल लोगों का आकर्षित हो जाना स्वाभाविक है। सर्व सुविधा-संपन्न अहंभावी राजकुमार जयसेन का तो कहना ही क्या? वह अवश्य ऐसे किसी शील-विरोधी गुरु का कट्टर अनुयायी हो गया होगा।

भगवान बुद्ध के समकालीन छः अन्य लोकविश्रुत धर्माचार्य थे जो बहुजनपूज्य थे, गणी थे, गणाधिपति थे और अपने-अपने संप्रदाय के संस्थापक-तीर्थंकर थे। आज के भारत की आम जनता के लिए उनमें से पांच के तो नाम तक काल-प्रवाह में बहकर विलुप्तप्राय हो चुके हैं। पुरातन वाङ्मय में कहीं-कहीं उनके नाम का और बहुत संक्षेप में उनकी शिक्षा का उल्लेख मिलता है। उसी के आधार पर हम उनके बारे में कुछ जान सकते हैं। छठे निगंठ नाथपुत्त (महावीर स्वामी) ही केवल एक ऐसे बचे हैं जो कि भारत के जनमानस के लिए श्रद्धा-पात्र के रूप में अब तक कायम रह सके हैं क्योंकि वे कर्म और कर्मानुकूल कर्म-फल के नैसर्गिक धर्म-सिद्धांत के पोषक थे और चातुर्याम के रूप में शील-सदाचार की धर्म-शिक्षा को महत्त्व देते थे। वे कामभोग संबंधी भ्रष्टाचार के रंचमात्र भी पोषक नहीं थे। अतः राजकुमार जयसेन उनका शिष्य रहा हो, इसकी संभावना बिल्कुल नहीं है।

बाकी पांच धर्माचार्यों में से एक था – संजय वेलट्ठिपुत्त। वह बहुत ही अस्थिर मान्यता का आचार्य था। जब कोई उससे पूछता कि क्या अच्छे-बुरे कर्म का अच्छा-बुरा फल मिलता है? तो वह किसी मत पर स्थिर न रहता हुआ उत्तर देता कि मैं तो यह भी नहीं कहता कि अच्छे-बुरे कर्म का अच्छा-बुरा फल मिलता है और यह भी नहीं कहता कि अच्छे-बुरे कर्म का अच्छा-बुरा फल नहीं मिलता। राजकुमार जयसेन उसका भी शिष्य शायद ही रहा हो क्योंकि वह उन्मुक्त दुराचरण का स्पष्ट हिमायती नहीं लगता।

बाकी बचे चारों में से एक धर्माचार्य था – पूर्ण कश्यप। वह कर्म और तदनुकूल कर्म-फल के नैसर्गिक सिद्धांत का प्रबल विरोधी था। वह दावे के साथ यह कहता था कि दुराचरण में न कोई पाप है न दोष और न ही किसी दुराचरण का कोई दुष्फल भोगना पड़ता है। इसी प्रकार सदाचरण में न कोई पुण्य है न अच्छाई और न ही किसी सदाचरण का कोई सत्फल मिलता है।

अपना स्वार्थ साधने के लिए न झूठ बोलने में पाप है, न चोरी करने में, न डाका डालने में और न गांव लूटने में। न ही अपनी काम-वासना पूरी करने के लिए व्यभिचार करने में कोई पाप है तथा न ही प्राणियों की हत्या कर, उनकी बोटी-बोटी काट कर मांस का एक बड़ा ढेर खड़ा कर देने में ही कोई पाप है। इसी प्रकार न सच बोलने में, न यम-नियम-संयम में और न दान देने में ही कोई पुण्यलाभ है।

दूसरा धर्माचार्य था – मक्खलि गोशाल। वह कट्टर भाग्यवादी था और यह शिक्षा देता था कि प्राणियों के सुख-दुख का कोई कारण नहीं होता। न सत्कर्म के कारण सुख आता है और न दुष्कर्म के कारण दुख। सुख-दुख की मात्रा प्रारब्ध के अनुसार पूर्वनिश्चित होती है। उसमें कोई घट-बढ़ नहीं हो सकती। भाग्य द्वारा नियंत्रित प्राणी परवश है, पराधीन है, अबल है, असहाय है। किसी भी शील, व्रत, संयम, ब्रह्मचर्य अथवा पुरुषार्थ द्वारा उसके सुख-दुख में परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

तीसरा धर्माचार्य था – अजित केशकंबल। वह भी कर्म-सिद्धांत का घोर विरोधी था। उसकी भी यही मान्यता थी कि न किसी पाप-कर्म का बुरा फल होता है और न किसी पुण्य-कर्म का अच्छा फल। मनुष्य चार महाभूतों से बना है। मरणोपरांत चिता पर जलाये जाने के बाद उसकी केवल राख ही बचती है और कुछ नहीं।

उन दिनों का एक अन्य धर्माचार्य था – प्रक्रुद्ध कात्यायन। उसकी शिक्षा के अनुसार किसी तीक्ष्ण हथियार से एक व्यक्ति का शिर काट दिया जाय तो भी वह हत्या नहीं है क्योंकि जीव तो अजर

है, अमर है, ध्रुव है, शाश्वत है, कूटस्थ है। अतः न कोई मारक है, न मृत। न कोई हत्यारा है, न हत। न कोई मारने वाला है, न मरने वाला। याने अपने स्वार्थ-साधन के लिए असंख्य हत्याएं कर दी जांय तो भी कोई दोष नहीं।

हम नहीं जानते कि जयसेन जैसा शील-सदाचार विरोधी राजकुमार इन पिछले चारों वाममार्गी गुरुओं में से किसका अनुयायी था। परंतु इतना स्पष्ट है कि वह अवश्य इनमें से किसी एक के चक्कर में पड़ कर बहुत भटक गया था। शुद्ध धर्म-गंगा के इतने समीप रहते हुए भी वह इससे लाभान्वित नहीं हो सका था। स्वयं कामांध होने के कारण अमर्यादित कामभोग को बढ़ावा देने वाले ऐसे शीलभ्रष्ट शास्ता ही उसे प्रिय लगते थे। किसी धर्मनिष्ठ शास्ता के सान्निध्य में कुछ समय के लिए भी ब्रह्मचर्यवास करना उसे निरर्थक लगता था। इस निमित्त वह अपने परम हितैषी मामा की भी पूरी बात सुनने के लिए तैयार नहीं था। भिक्षा के लिए अपने घर आये हुए भिक्षु भूमिज को उसने भोजन तो अवश्य परोसा, पर धर्म से दूर रहकर अपने सही मंगल-कल्याण से वंचित ही रहा।

शील-सदाचार धर्ममय जीवन का आधार है। यही धर्म की बुनियाद है। कोई वाक्चातुर्य द्वारा शील-सदाचार की बुनियाद के बिना समाधि और प्रज्ञा की लाख मनमोहिनी बातें करके लोगों को आकर्षित कर ले, परंतु इससे कोई कल्याणकारी उपलब्धि नहीं हो सकती। शील-सदाचार पर आधारित धर्म ही शुद्ध धर्म है। उसे धारण करने में ही सही माने में मंगल है, सही माने में कल्याण है।

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

विपश्यना शुल्क

कागज के भाव अत्यधिक बढ़ जाने के कारण विपश्यना पत्रिका के शुल्क में कई वर्षों के बाद वृद्धि की घोषणा की जा रही है। अब इसका **वार्षिक शुल्क रु. २०/-** एवं **आजीवन शुल्क रु.२५०/-** कर दिया गया है। विश्वास है सभी साधक इसे सहर्ष स्वीकार करेंगे। सभी साधना-केंद्रों को त्वरित प्रभावी नई दर पर ही शुल्क स्वीकार करना चाहिए।

पत्रिका विदेश में मँगाने पर पोस्टेज-खर्च बहुत आता है, अतः वहां के लिए **वार्षिक शुल्क $२०और** आजीवन शुल्क **$१००** रखा गया है।

जो लोग पहले रु. १००/- आजीवन शुल्क भर चुके हैं, वे स्वेच्छापूर्वक चाहें तो शेष रकम भिजवा कर शुल्क देने में असमर्थ लोगों को पत्रिका भिजवाने में सहयोगी बन सकते हैं।

शुल्क देने में असमर्थ होने पर भी सभी नए साधकों को **प्रथम एक वर्ष** तक हिंदी 'विपश्यना' पत्रिका मुफ्त भेजी जाती है। तत्पश्चात यदि असमर्थ साधक अपनी अभिरुचि लिख भेजें तो अगले एक वर्ष तक पुनः निःशुल्क भिजवाने की व्यवस्था कर दी जाती है। अन्यथा वार्षिक शुल्क-समाप्ति की तरह आजीवन को छोड़कर शेष सभी नाम कम्प्युटर-सूची से स्वतः निकल जाते हैं।

अतः वार्षिक शुल्क-दाता अपनी शुल्क-समाप्ति की तिथि का ध्यान रखें (जो कि पत्रिका पर चिपकाए पते के ऊपर Y और P के साथ लिखी रहती है) और समय रहते अपना शुल्क पुनः भेज दें।

Y का अर्थ Yearly subscription याने वार्षिक शुल्क-दाता।

L का अर्थ Life subscription याने आजीवन शुल्क-दाता।

P का अर्थ Privilege याने जिन्हें एक वर्ष तक स्वेच्छा से भेजी जा रही है।

यदि किसी ने आजीवन शुल्क भरा हो और भूल से उस पर L न लिखा हो तो कृपया अपनी रसीद संख्या और तिथि अथवा रसीद की झेराक्स प्रति भिजवा कर सुधरवा लें।

अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका Vipassana Newsletter केवल शुल्क दाताओं को ही भेजी जाती है। इसका भी वार्षिक शुल्क रु. २०/- एवं आजीवन शुल्क रु.२५०/- रखा गया है।

किसी प्रकार की भूल से यदि किसी की पत्रिका बंद हो जाय तो एक महीने के बाद अपनी ग्राहक-संख्या सहित पत्रिका न मिलने की सूचना अवश्य दें ताकि उनकी पत्रिका पुनः चालू की जा सके।

धन्यवाद!

व्यवस्थापक,
विपश्यना प्रकाशन विभाग.